श्रीमन्माहेश्वराचार्य क्षेमराज
विरचिता
भाषानुवाद सहिता

पराप्रावेशिका

भाषानुवाद लेखिका
श्रीमती प्रभादेवी

प्रकाशक
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर – जम्मू – देहली- मुम्बई

श्रीमन्माहेश्वराचार्य क्षेमराज
विरचिता
भाषानुवाद सहिता

पराप्रावेशिका

भाषानुवाद लेखिका
श्रीमती प्रभादेवी

प्रकाशक
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर – जम्मू – देहली– मुम्बई

No. ISBN 81-88/94-03-4

पहला संस्करण : १९७३
द्वितीय संस्करण : २२ अप्रेल २००९

मूल्य : पंद्रह रुपये

दो शब्द

इस पुस्तक की सारी प्रतियां समाप्त होने के साथ-साथ, इसका भाषानुवाद हमारे गुरुवर्य शैवाचार्य ईश्वर श्री लक्ष्मण जू महाराज के मुखारबिन्द से प्रस्फुटिक हुई अमृतवाणी के आधार पर होने के कारण, ट्रस्ट ने इसे दुबारा छापने का निर्णय लिया ताकि जन साधारण लाभान्वित हो जाये।।

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

जम्मू।
१५-१-२००९

शाम्भवयोगविशारद
अप्रतिम
सदगुरुवर्य
ईश्वर-स्वरुप जी के
चरण कमलों में सादर समर्पित

भूमिका

"परा-प्रावेशिका" शैव-दर्शन रूपी अगाध सागर में डुबकी लगाने वाले साधक के लिए पहला प्रयास है। यह छोटा सा ग्रन्थ कश्मीर के विजयेश्वर (वर्तमान बीजबिहारा) स्थानवासी महामाहेश्वराचार्यवर्य क्षेमराज के तीन मौलिक ग्रन्थों (पराप्रावेशिका, प्रत्यभिज्ञाहृदय, भैरवानुकरण स्तोत्र) में से एक है। शैवकेसरी आचार्य अभिनवगुप्त का शिष्य क्षेमराज अपने समय का प्रकाण्ड पण्डित था। इस तथ्य की पुष्टि उसके द्वारा की गई अनेक ग्रन्थों की वृत्तियों, स्वनिर्मित मौलिक ग्रन्थों और कुछेक ग्रन्थों के मूलपाठ सम्बन्धी गवेषणा से होती है।

आज तक इस ग्रन्थ का प्रकाशन मूल रूप में ही हुआ है पर सर्व साधारणोपयोगी भाषानुवाद सहित इसका यह प्रकाशन पहली बार हो रहा है। लेखिका श्रीमती प्रभादेवी का यह प्रयास निस्सन्देह स्तुत्य है। विदुषी लेखिका, श्री स्वामी ईश्वर-स्वरूप ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी के आश्रम में गुरुमहाराज के चरण-कमलों में सेवापरायणा होने के साथ-साथ उनके मुखारविन्द से प्रस्फुटित हुई अमृतवाणी को हृदयकोष में सुरक्षित रखकर पुस्तकाकार बनाने में दत्तचित्ता रहती है। प्रस्तुत पुस्तक उसी प्रयास का एक पुष्प है।

परम शिव प्रकाश रूप है और विमर्श उसका स्वतन्त्र स्वभाव है। विमर्श नामक अपने इस स्वभाव से वह अपनी पूर्णाहन्ता के प्रमोद में घूर्णित होकर क्रीड़ा करते हैं। इस आनन्दावस्था को व्यक्त करने के लिए वह आत्मस्वरूप को प्रमातृ-प्रमेय के विभिन्न रूपों में प्रकाशित करते हैं। प्रमातृरूप अर्थात् अहंरूप में परमेश्वर के स्वभावविकास के उन नाना प्रकारों को 'शिव' से लेकर

'सकल' तक सात वर्गों में और प्रमेय रूप को छत्तीस वर्गों में विभक्त किया है। प्रमेय रूप के उन छत्तीस वर्गों को ही छत्तीस तत्व कहते हैं जो 'शिवतत्व' से लेकर 'पृथिवीतत्व' तक हैं। इन्हीं ३६ तत्वों का अलग-अलग लक्षण देकर भली भांति निरूपण प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का, वटबीज की तरह, स्वल्पाकार होने पर भी महान प्रयोजन है, क्योंकि शैवदर्शन के विद्यार्थी को प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ में इनका उल्लेख देखने को मिलता है।

इस संस्करण की भाषा-टीका की उपयोगिता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं। सुकुमार बुद्धि वाले पाठक भी भाषानुवाद की सहायता से इस पुस्तक को सरलता से समझ सकते हैं। आशा है कि पाठक विदुषी-लेखिका के प्रयास को सफल बनायेंगे और उन्हें अन्य प्रकाशन प्रतीक्ष्य पुस्तकों को प्रकाशित कराने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

मखनलाल कोकिलू
अध्यक्ष संस्कृत-हिन्दी विभाग
गवर्नमेन्ट कालेज फार विम्यन
श्रीनगर

अनन्त चतुर्दशी
१९७३

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां
हृदयं परमेशितुः ।
परादिशक्तिरूपेण
स्फुरन्तीं संविदं नुमः ।।

(अर्थ)

मैं (उस) संवित्‌देवी की स्तुति करता हूं, जो जगद्रूप होकर जगत् से उत्तीर्ण अर्थात् परे है, जो परमेश्वर का हृदय अर्थात् सार बनी हुई है तथा जो परा आदि अर्थात् परा, परापरा और अपरा शक्तियों से विकसित बनी हुई है।

(मूल)

इह खलु परमेश्वरः प्रकाशात्मा, प्रकाशश्च विमर्शस्वभावः । विमर्शो नाम विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन विश्वसंहरणेन चाकृत्रिमाहम्-इति विस्फुरणम् । यदि निर्विमर्शः स्यात् अनीश्वरो जडश्च प्रसज्येत ।

(अर्थ)

वस्तुतः इस शैवमार्ग में परमेश्वर प्रकाश-स्वरूप है। प्रकाश का पारमार्थिक स्वभाव यानी स्वरूप विमर्श है। इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार में, स्वाभाविक रूप से 'अहंविकास' को, अर्थात् "मैं ही इस की सृष्टि स्थिति और संहार करता हूं"—इस प्रकार की सहज-भावना करने को विमर्श कहते हैं। यदि यह शिव-प्रकाश विमर्श से रहित होता तो विमर्शहीन अनीश्वर जडरूप सूर्यादि प्रकाश भी प्रसंग में आते अर्थात् वे जड़ प्रकाश भी ईश्वर माने जाते।

(मूल)

एष एव च विमर्शः—चित्, चैतन्यं, स्वरसोदितापरावाक्, स्वातन्त्र्यम्, परमात्मनो मुख्यमैश्वर्यं, कर्तृत्वं, स्फुरत्ता, सारो, हृदयं, स्पन्दः—इत्यादि शब्दैरागमेषूद्घोष्यते ।

(अर्थ)

इस प्रकार के विमर्श को सम्पूर्ण शैव-शास्त्रों में चित् चैतन्य स्वयं उदित परावाक् स्वतन्त्रता, परमेश्वरसम्बन्धी मुख्य ऐश्वर्य, कर्तृता, स्फुरता, सार, हृदय, स्पन्द इत्यादि नामों से उद्घोषित किया गया है।

(मूल)

अत एव अकृत्रिमाहमिति–ग्नतत्त्वः स्वयं प्रकाशरूपः परमेश्वरः पारमेश्वर्या शक्त्या शिवादि-धरण्यन्तजगदात्मना स्फुरति प्रकाशते च। एतदेव अस्य जगतः कर्तृत्वमजडत्वं च, जगतः कार्यत्वमपि एतद-धीनप्रकाशत्वमेव।

(अर्थ)

इसी विमर्श के फलस्वरूप सहज पूर्णाहन्तारूप स्वप्रकाशात्मा परमेश्वर अपनी ऐश्वर्ययुक्त स्वातन्त्र्यशक्ति से शिव-तत्त्व से लेकर पृथिवीतत्त्व तक जगत् रूप से विकास में आता है और प्रकट होता है। इस शिव का इस प्रकार से प्रवर्तित होना ही शिव का कर्त्तापन तथा उसकी चेतनता है। जगत की यह कार्यता भी अर्थात् जगद्वर्ती घटपटादि, जड़पदार्थवर्ग भी इसी शिवप्रकाश के अधीन है।

(मूल)

एवंभूतं जगत् प्रकाशरूपात् कर्तुः महेश्वरादभिन्नमेव।
भिन्नवेद्यत्वेऽप्रकाशमानत्वेन प्रकाशनायोगात् न किंचित्स्यात्।

(अर्थ)

इस भांति प्रवृत्त हुआ यह जगत् प्रकाशस्वरूप इस जगत् के कर्त्ता महेश्वर से अभिन्न ही ठहरा है। यदि इस जगत् को प्रकाशस्वरूप शिव से भिन्न एवं असंबन्धित माना जाता तब तो अप्रकाशित बनकर यह जगत कुछ भी न रहता अर्थात् इसकी कोई भी सत्ता अनुभव में न आती।

(मूल)

अनेन च जगता अस्य भगवतः प्रकाशात्मकं रूपं न कदाचित् तिरोधीयते। एतत्प्रकाशनेन प्रतिष्ठां लब्ध्वा प्रकाशमानमिदं जगत् आत्मनः प्राणभूतं कथं निरोद्धुं शक्नुयात्, कथं च तन्निरुध्य स्वयमेव तिष्ठेत्।

(अर्थ)

ऐसे (कर्तृ रूप और कार्यरूप) जगत् से इस भगवान का प्रकाशात्मक रूप कदापि छिप नहीं सकता। (क्योंकि) जिस प्रकाश के द्वारा यह जगत अपनी स्थिति को प्राप्त करके प्रकाशित बना हुआ है, ऐसे ही अपने जीवन बने हुए प्रकाश का निरोध करने में यह जगत् किस प्रकार समर्थ हो सकता है और कैसे उसका निराकरण करके स्वयं ठहर सकता है।

(मूल)

अतश्चास्य वस्तुनः साधकमिदं बाधकमिदं प्रमाणम्-इत्यनुसंधानात्मकसाधकबाधकप्रमातृरूपतया चास्य सद्भावः। तत्सद्भावे किं प्रमाणम् ? इति वस्तुसद्भावमनुमन्यतां, तादृक् स्वभावे किं प्रमाणम् ? इति प्रष्टृरूपतया च पूर्वासिद्धस्य महेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्वं सर्वस्य स्वसंवेदनसिद्धम्।

(अर्थ)

अतः "इस शिवरूप वस्तु को सिद्ध करने वाले ये प्रमाण हैं तथा" इस शिवात्मक वस्तु का खण्डन करने वाले ये प्रमाण हैं इस प्रकार साधक और बाधक व्यक्ति रूप शिव के द्वारा ही इस शिव का अस्तित्व दीख पड़ता है। (भाव यह है कि आस्तिक तथा नास्तिक दोनों में विमर्श करने की सत्ता प्राप्त है, अतः परमेश्वर उनके असिद्ध करने से पूर्व ही स्वयंसिद्ध है।)

प्रश्न–इस शिव के अस्तित्व का क्या प्रमाण है ?

उत्तर–ऐसे शिव प्रमातृस्वरूप का आप स्वयं ही अनुभव करें।

प्रश्न–उस प्रकार के स्वरूप में क्या प्रमाण है ?

उत्तर–यह शङ्का तो प्रश्न करने वाले की होने से स्वयं ही मिट जाती है, क्योंकि महेश्वर-स्वरूप की स्वयं-प्रकाश-रूपता तो सबों को अपने अनुभव से ही सिद्ध है।

(मूल)

किंच। प्रमाणमपि यमाश्रित्य प्रमाणं भवति, तस्य प्रमाणस्य तदधीनशरीरप्राणनीलसुखादिवेद्यं चातिशय्य सदा भासमानस्य वेदकैकरूपस्य सर्वप्रमितिभाजः सिद्धौ अभिनवार्थप्रकाशस्य प्रमाणवराकस्य कश्चोपयोगः।

(अर्थ)

दूसरी बात यह भी है कि प्रमाण अर्थात् अनुमान आदि दृष्टान्त भी जिस प्रमातृरूप प्रमाण के आश्रित रह कर प्रमाण बनता है, वही प्रमातृरूप प्रमाण, शरीर, प्राण तथा नील, सुख आदि वेद्य को अपने अधीन रख कर सर्वातिशयरूप से सदा भासमान है। इसी भांति ज्ञाता-स्वरूप तथा संपूर्ण ज्ञान के केन्द्र बने हुए प्रमातृ-प्रकाश को सिद्ध करने के लिए केवल-मात्र नवीन अर्थ का प्रकाशक प्रमाण बिचारा क्या प्रयोजन रखता है।

(मूल)

एवं च शब्दराशिमायपूर्णाहन्तापरामर्शसारत्वात् परमशिव एव षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकः प्रपञ्चः।

(अर्थ)

इस सिद्धान्त के सिद्ध होने पर संपूर्ण शब्दों का भण्डार पूर्णाहन्ता से संयुक्त विमर्शात्मा परम शिव ही ३६ (छतीस) तत्त्वों के स्वरूप से जगद्रूपता के विस्तार को प्राप्त हुआ है।

(मूल)

षट्त्रिंशत्तत्त्वानिच,–शिवशक्तिसदाशिवईश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषप्रकृतिबुद्धि-अहंकारमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुः जिह्वा घ्राणवाक्पाणिपादपायुउपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्ध-आकाशवायुवह्निसलिलभूमयः इत्येतानि।

(अर्थ)

छतीस तत्त्वों के नाम ये हैं :–

१. शिव, २. शक्ति, ३. सदाशिव, ४. ईश्वर, ५. शुद्धविद्या, ६. माया, ७. कला, ८. विद्या, ९. राग, १०. काल,

११. नियति, १२. पुरुष, १३. प्रकृति, १४. बुद्धि, १५. अहंकार, १६. मन, १७. श्रोत्र, १८. त्वचा, १९. चक्षु, २०. जिह्वा, २१. घ्राण, २२. वाक्, २३. पाणि, २४. पाद, २५ पायु, २६. उपस्थ, २७. शब्द, २८. स्पर्श, २९ रूप, ३०. रस, ३१. गन्ध, ३२. आकाश, ३३. वायु, ३४. वह्नि ३५. सलिल और ३६. भूमि। इति।

(मूल)

अथैषां लक्षणानि। तत्र शिवतत्त्वं नाम इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक-केवल-पूर्णानन्दस्वभावरूप: परमशिव एव।

(अर्थ)

इनके लक्षण ये हैं :–

इनमें से निश्चय रूप से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति स्वरूप केवल पूर्ण आनन्द से युक्त परमशिव ही **"शिवतत्त्व"** कहलाता है।

(मूल)

अस्य जगत्स्त्रष्टुमिच्छां परिगृहीतवत: परमेश्वरस्य प्रथमस्पन्द एवेच्छा शक्तितत्त्वम्। अप्रतिहतेच्छत्वात् सदेवाङ्कुरायमाणमिदं जगत् स्वात्मनाहन्तयाच्छाद्य स्थितं रूपं सदाशिवतत्त्वम्।

(अर्थ)

इस जगत् को बनाने की इच्छा धारण करने वाले परमेश्वर के प्रथम स्पन्द अर्थात् प्रसर पर जो इच्छा-शक्ति उत्पन्न होती है, वही **शक्ति-तत्त्व** है। अत: इस परमशिव की यह इच्छा पूर्णत: अंकुरित होने को ही है। इसी प्रकार अंकुरायमाण यह जगत् स्वरूप संबन्धी पूर्णाहंभाव से आच्छादित हुआ ही **सदाशिवतत्त्व** कहलाता है। इसका परामर्श "अहं-इदं" है।

(मूल)

अंकुरितं जगदहन्तयावृत्य स्थितमीश्वरतत्त्वम्। अहन्तेदन्तयोरैक्यप्रतिपत्ति: शुद्धविद्या। स्वस्वरूपेषु भावेषु भेद-प्रथा माया।

(अर्थ)

अंकुरित बनकर जगत् स्वरूप, अहंता की आवृत्ति में ठहरा हुआ, **ईश्वरतत्त्व** कहलाता है। अहंता अर्थात् स्वरूप सम्बन्धी और इदंता अर्थात् जगत संबन्धी दोनों के युगपद्भाव के ज्ञान को, (अर्थात् इस तत्त्व में जिस कोटि में अहंता स्थित है उसी दर्जे पर इदंता भी अवस्थित है) **शुद्धविद्यातत्त्व** कहते हैं। परमेश्वर का ही स्वरूप बंने हुए पदार्थों में भेदप्रथा का होना ही मायातत्त्व कहलाता है।

(मूल)

यदा तु परमेश्वरः पारमेश्वर्या मायाशक्त्या स्वरूपं गूहयित्वा संकुचितग्राहकतामश्नुते, तदा पुरुषसंज्ञः। अयमेव मायामोहितः कर्मबन्धनः संसारी। परमेश्वरादभिन्नोऽपि अस्य मोहः। परमेश्वरस्य न भवेत्। इन्द्रजालमिव ऐन्द्रजालिकस्य स्वेच्छया सम्पादित-भ्रान्तेः। विद्याभिज्ञापितैश्वर्यस्तु चिद्घनो मुक्तः परमशिव एव।

(अर्थ)

जब तथ्यतः परमेश्वर अपनी ऐश्वर्यवती मायाशक्ति से अपने ही तात्त्विक स्वरूप को छिपा कर संकुचित जीव-भाव को प्राप्त करता है, तब इसे **'पुरुष'** संज्ञा दी जाती है और इसी परमेश्वर को उस समय माया से मोहित बना हुआ कर्म-बन्धनों से युक्त संसारी कहते हैं। ऐसी दशा में परमेश्वर से अभिन्न होते हुये भी इसे मोह होता है पर परमेश्रवर को यह मोह नहीं होता। जैसे इन्द्रजाल (जादूगरी) ऐन्द्रजालिक (जादूगर) को अपनी इच्छा से ही संपादित करने के कारण भ्रमित नहीं करती। अत एव शुद्धविद्या के द्वारा जाने हुए स्वरूपलाभात्मक ऐश्वर्य से युक्त बना हुआ यह जीव चिद्घन और मुक्त परमशिव ही बनता है।

(मूल)

अस्य सर्वकर्तृत्वं सर्वज्ञत्वं पूर्णत्वं नित्यत्वं व्यापकत्वं च शक्तयोऽसंकुचितापि संकोचग्रहणेन कला-विद्या-राग- काल-नियतिरूपतया भवन्ति।

(अर्थ)

इस परमेश्वर की सर्वकर्तृता, सर्वज्ञता पूर्णता, नित्यता और व्यापकता नामक शक्तियां यद्यपि सदा असंकुचित ही हैं तथापि संकोच को धारण करने पर क्रम से कला-विद्या-राग-काल और नियति रूप से संकुचित सी बनती हैं।

(मूल)

अत्र कला नाम अस्य पुरुषस्य किञ्चत्कर्तृता हेतुः। विद्या किंचिज्ज्ञत्वकारणम्। रागो विषयेष्वभिष्वङ्गः। कालो हि भावानां भासनाभासनात्मकानां क्रमोऽवच्छेदको भूतादिः। नियतिः–ममेदं कर्तव्यम् नेदं कर्तव्यम् इति नियमनहेतुः। एतत् पञ्चकम् अस्य स्वरूपावरकत्वात् कंचुकमिति उच्यते।

(अर्थ)

इनमें से **कला** नामक तत्त्व, इस पुरुष को नियमित कार्य कराने का हेतु है। **विद्या** किसी नियमित ज्ञान अथवा (संकुचित) विद्या का कारण है। विषयों में अनुरंजित होना **राग** कहलाता है। भासित अर्थात् दृष्टिगोचर तथा अभासित (न दिखाई देने वाले) पदार्थों के क्रम का अलगाव करने वाले भूत, भविष्यत् और वर्तमान को **काल** कहते हैं। यह मेरा कर्तव्य है और यह मेरा कर्तव्य नहीं है–ऐसे नियमों के हेतु को **नियति** कहते हैं। इस प्रकाशात्मा परमेश्वर के पारमार्थिक स्वरूप को ढांपने के कारण इन कला आदि पांच तत्वों को **कंचुक** कहते हैं।

(मूल)

महदादि-पृथिव्यन्तानां तत्त्वानां मूलकारणं प्रकृतिः। एषा च सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था अविभक्तरूपा।

(अर्थ)

बुद्धितत्त्व से लेकर पृथिवी तत्त्व तक २३ तत्त्वों का मूलकारण प्रकृति ही है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था को **प्रकृति** कहते हैं। (इसमे प्रकृति में ये तीनों गुण अविभक्त रूप से ठहरे हैं)।

(मूल)

निश्चयकारिणी विकल्पप्रतिबिम्बधारिणी बुद्धिः। अहंकारो नाम–ममेदं न ममेदमित्यभिमान साधनम्। मनः संकल्प साधनम्। एतत् त्रयमन्तःकरणम्।

(अर्थ)

(पदार्थों और विषयों का) निश्चय कराने वाली और विकल्पों के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली बुद्धि है। यह मेरा है और यह मेरा नहीं है—इस प्रकार के अभिमान का साधन **अहंकार** है। संकल्पों का साधन **मन** है। ये तीन **अन्त: करण** कहलाते हैं।

(मूल)

शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्धात्मकानां विषयानां क्रमेण ग्रहण–साधनानि श्रोत्र–त्वक्–चक्षुर्जिह्वा–घ्राणानि पंच ज्ञानेन्द्रियानि। वचनादान–विहरण–विसर्गानन्दात्मक्रियासाधनानि परिपाट्या वाक्–पाणि–पाद–पायूपस्थानि पंच कर्मेन्द्रियाणि।

(अर्थ)

शब्द–स्पर्श–रूप–रस और गन्ध विषयों को ग्रहण करने के साधन, क्रमपूर्वक **कान, त्वचा, नेत्र, चिह्वा और नासिका**–ये पाचं ज्ञानेन्द्रियां हैं। बोलना, ग्रहण करना, विहार करना, मल आदि त्यागना और विषय आनन्द रूप क्रियाओं के साधन क्रमपूर्वक **वाणी, हाथ, पाँव, पायु और उपस्थ** ये पांच कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं।

(मूल)

शब्द–स्पर्श–रूप–रस गन्धा: सामान्याकारा: पञ्च तन्मात्राणि। आकाशमवकाशप्रदम्। वायु: सञ्जीवनम्। अग्निर्दाहक:, पाचकश्च। सलिलमाप्यायकं, द्रवरूपं च। भूमिर्धारिका।

(अर्थ)

शब्द–स्पर्श–रूप–रस और गन्ध जहां सामान्य आकार से रहित हैं। अर्थात् इन पांच विषयों को जहां अंग–अंगी–भाव नहीं रहता, या जहां ये पांचों शब्द आदि अभिन्नभाव से ठहरते हैं, उन शब्द–स्पर्श–रूप–रस और गन्ध को **पांच तन्मात्र** कहते हैं। **आकाश** स्थान देने वाला है। **वायु** जीवन प्रदान करता है। **अग्नि** जलाने तथा पकाने का कार्य करती है। जल आप्यायन (तरी) और दृढता प्रदान करता है और **पृथिवी** समस्त पदार्थों और व्यक्तियों को धारण करती है।

(मूल)

यथा न्यग्रोधबीजस्थ:

शक्तिरूपो महाद्रुम: ।

तथा हृदयबीजस्थं

विश्वमेतच्चराचरम् ।। प० त्रिं० ।।

इत्याम्नायनीत्या परा भट्टारिका रूपेऽन्तर्भूतमेतज्जगत् ।

(अर्थ)

"जैसे है बढ़-बीज में,

शक्तिरूप महा वृक्ष ।

वैसे ही हृत्-बीज में

जडचेतन यह विश्व ।।"

परा त्रिंशिका तन्त्र में वर्णित इस नीति से यह जगत् पराभट्टारिका रूप हृदय-बीज के मध्य में ठहरा हुआ है अर्थात् उसी हृदय बीज के अन्तर्गत है ।

(मूल)

कथम् ? यथा घटशरावादीनां मृद्विकाराणां पारमार्थिकं रूपं मृदेव, यथा वा जलादिद्रवजातीनां विचार्यमाणं व्यवस्थितं रूपं जलादिसामान्यमेव भवति, तथा पृथिव्यादिमायान्तानां तत्त्वानां सतत्त्वं मीमांस्यमानं सदित्येव भवेत् । अस्यापि पदस्य निरूप्यमाणं धात्वर्थव्यञ्जकं प्रत्ययांशं विसृज्य प्रकृतिमात्ररूप: सकार एवावशिष्यते । तदन्तर्गतमेकत्रिंशत्तत्त्वम् ।

(अर्थ)

(प्रश्न) कैसे यह सारा विश्व इस हृदय-बीज में ठहरा हुआ है ? (उत्तर) जैसे मिट्टी का घड़ा, थाली आदि मिट्टी का ही विकार होकर, वास्तविक दृष्टि में मिट्टी ही है अथवा जैसे जल-सम्बन्धी आर्द्र-वस्तुओं का व्यवस्थित रूप अर्थात् बरफ आदि का वास्तविक रूप विचार करने पर सामान्य जल ही है, वैसे ही पृथिवी तत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक इक्कत्तीस तत्त्वों का स्वरूप विचारने पर सत् रूप ही है । इस सत् शब्द का भी यदि निरूपण किया जाये तो धातु के अर्थ को प्रकट करने वाले अस् भुवि धातु के अत् प्रत्ययांश को छोड़कर सकार ही शेष रहता है । उसी सकार में ये पृथिवी से लेकर माया तक इक्कत्तीस तत्त्व अन्तर्भूत हैं ।

(मूल)

ततः परं शुद्धविद्येश्वर-सदाशिव तत्त्वानि ज्ञानक्रियासाराणि शक्तिविशेषत्वात् औकारेऽभ्युपगमरूपेऽनुत्तरशक्तिमयेऽन्तर्भूतानि।

(अर्थ)

इन उपरोक्त इक्कतीस तत्त्वों से परे शुद्धविद्यातत्त्व, ईश्वरतत्त्व, और सदाशिवतत्त्व ज्ञान और क्रिया के सार बने हुए हैं, अर्थात् इन तीन तत्त्वों में स्वरूप सम्बन्धी ज्ञान और क्रिया ही प्रधान बने हुए हैं। शक्तिविशेष होने के कारण ये तीन तत्त्व पारमार्थिक स्वरूप का अंगीकार करने वाले अनुत्तरशक्ति के सूचक औकार में अन्तर्भूत हैं।

(मूल)

अतः परमूर्ध्वाधः सृष्टिरूपो विसर्जनीयः। एवं भूतस्य हृदयबीजस्य महामन्त्रात्मको विश्वमयो विश्वोत्तीर्णः परमशिव एवोदयविश्रांतिस्थानत्वान् निजस्वभावः।

(अर्थ)

इन उपरोक्त तीन तत्त्वों के वाचक औकार से भी उच्चभाव में, ऊर्ध्वसृष्टिरूप और अधःसृष्टिरूप विसर्ग है (जो शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व) का वाचक है, अर्थात् जिस में शिव और शक्ति अन्तर्भूत है। इस प्रकार इन तीन बीजाक्षरों से बने हुए (सौः) हृदय-बीज का अपना अनपायी स्वरूप पूर्ण अहंपरामर्शरूप विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण परमशिव ही है, यतः वही परमशिव इस सम्पूर्ण जगत का उदयस्थान तथा विश्रांति का स्थान होने के कारण सारभूतस्वरूप बना है।

(मूल)

ईदृशं हृदयबीजं तत्त्वतो यो वेद समाविशति च, स परमार्थतो दीक्षितः, प्राणान् धारयन् लौकिकवद्वर्तमानो जीवन्मुक्त एव भवति। देहपाते परमशिवभट्टारक एव भवति।

(अर्थ)

ऐसे हृदय-बीज को जो कोई जानता है और इसमें समावेश करता है, वही तत्त्वदृष्टि से दीक्षित बना हुआ है। ऐसा पुरुष प्राणों को धारण करता हुआ एवं अन्य सांसारिक जनों की भांति व्यवहार करता हुआ भी जीवन्मुक्त ही है। वह शरीर त्यागने के पश्चात् परमशिव ही बनता है।

(इति शिवम्)